

Q11) ज्ञान से क्या अभिप्राय है? इसकी विस्तार से चर्चा करें। जानने से आप क्या समझते हैं? ज्ञान एवं जानने में क्या अंतर है?

Ans:-

ज्ञान शब्द 'ज्ञ' - धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना (बोध) बाह्य अनुभव एवं 'प्रकाश' से प्राप्त ज्ञान है। अतः ज्ञान का अर्थ उन सूचनाओं का संग्रह है जो किसी वस्तु, परिस्थिति और अनुभवों की समझ को विकसित करने में सहायक होते हैं। ज्ञान समस्त जिज्ञासा का आधार ही जिज्ञासा किसी भी प्रकार की हो चाहे विद्यालयी औपचारिकता या अमौ-पचारिक। ज्ञान एक साधन एवं साध्य दोनों ही रूपों में पाया जाता है। ज्ञान किसी भी परिस्थिति एवं प्रक्रिया से संबंधित तथ्य और सत्य है। यह हमारे समाज में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों तथा वातावरण से संबंधित कई प्रकार के लक्ष्य होते हैं जो सत्य पर आधारित होते हैं। इन परिस्थितियों तथा वातावरण की लक्ष्यपूर्ण जानकारी ज्ञान कहलाता है जो कर्ममय एवं अविवेक की पीढ़ियों के लिए सर्वत्र परिष्कृत एवं परिशोधित रूप में हस्तान्तरित होता रहता है।

ज्ञान अनुभवों की समझ पर आधारित सूचनाएँ हैं। प्रती को जीवन में अनुभव होते रहते हैं और इन अनुभवों का जब हम सामान्यीकरण कर लेते हैं और एक सिद्धांत और नियम के रूप में विकसित कर लेते हैं तो यह ज्ञान बन जाता है और यही ज्ञान सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो जाता है। जैसे - प्रथम वैज्ञानिक अक्षर, आइंस्टाइन आदि ने जो अनुभव किया उन तथ्यों को सिद्धांत के रूप में विकसित कर दिया और आज वे सिद्धांत विज्ञान के आधारभूत ज्ञान के रूप में विद्यमान हैं।

कार्ल स्वीबी के अनुसार - "कुछ करने या किया करने की क्षमता ही ज्ञान है।  
लॉक के अनुसार - "ज्ञान लोगों की बुद्धि और योग्यता में विद्यमान  
ज्ञान की उपस्थिति होने का योग है।"

प्लूटार्क के अनुसार :- "ज्ञान सर्वोच्च प्रदत्त है।"

ज्ञान की विशेषता :-

- ① ज्ञान धन की तरह है जितना एक मनुष्य को प्राप्त होता है, वह उतना ही आसानी से खर्च करता है।
- ② ज्ञान सत्य तक पहुँचने का साधन है।
- ③ सूचना ज्ञान का स्रोत है।
- ④ ज्ञान प्रदान करने के लिए विद्यमान रहता है।
- ⑤ ज्ञान तीन वस्तुओं की ओर प्रवृत्त करता है - सत्य, प्रिय और अनुभव।

⑥ ज्ञान की कोई सीमा नहीं है।

जानना (KNOWING) :- जानना एक विकास की प्रक्रिया है। यह आजीवन चलती रहती है। जिसका उद्देश्य है जानकारी या ज्ञान इकट्ठा करना। इस प्रक्रिया से बालक जीवन भर नये-नये ज्ञान से परिचित होता है। जानने की प्रक्रिया दो रूपों में सम्पन्न होती है प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जानकारी हासिल करना स्वयं किये गये प्रयास तथा अनुभवों पर आधारित होता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से जानने का अभिप्राय यह है कि " जो स्वयं के अनुभवों पर आधारित न ही तथा किसी दूसरे के अनुभवों पर आधारित ही था किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा सुनकर जाना गया है।" यह ज्ञान के रूप में संव्य होता है पर जब यही घटना बालक या व्यक्ति के प्राथमिक चरित हो जाती है तो वह उसे जानने लगता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष माध्यमों से होकर चलती है।

अर्थात् बृहम और स्थूल तथ्यों की जानकारी प्राप्त करते हुए अर्थपूर्ण स्वर प्रदान करना ही जानना है। अर्थात् जो पदार्थ जैसे हो इसकी यही जानकारी प्राप्त करना जानना है।  
लेव्से के अनुसार :- "जानना वह प्रक्रिया है जिसे मनुष्य अपनी इंद्रियों द्वारा प्राप्त करता है।"

लेव्से के अनुसार - " वह जानकारी जो वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होती है।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जानने या जानकारी की कोई सीमा नहीं है। जानकारी को हम अद्याह मांडार के रूप में संचित कर सकते हैं।

विशेषतायें :-

- ① जानकारी एक ऐसी सम्पत्ति है जो अपने से और अधिक प्राप्त की इच्छा कराती है।
- ② जानना ' बालक की क्रियाशिलता पर निर्भर होता है।
- ③ यह व्यक्ति के अनुभवों व प्रयासों से संबंधित है।
- ④ जानना ' बृहम तथा स्थूल तथ्यों की जानकारी है।
- ⑤ जानना ' एक विशाल समुद्र की भांति है जिसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती।
- ⑥ यह निरंतर विकास की ओर ले जाता है।

Q(2.) ज्ञान के विभिन्न प्रकार व स्रोतों एवं विधियों का वर्णन करें।

Ans- ज्ञान सदा निर्णय के रूप में प्रदर्शित होता है जिसके अन्तर्गत किसी भी तथ्य की स्वीकृति किया जाता है या नकारा जाता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक निर्णय ही। विद्वत् इण्डिकोप में ज्ञान दो प्रकार का होता है।  
(1) प्राबुधभाविक ज्ञान (A Priori Knowledge) - कुछ ऐसे निर्णय भी होते हैं जिन पर एक क्षण के लिए भी संदेह नहीं किया जा सकता। ये जैविक शास्त्र के आधारभूत सिद्धांतों तथा गणित में पाए जाते हैं। ऐसे ज्ञान का अस्तित्व तब-प्रीमांला में होता है। इसमें कोई भी निर्णय स्रेया नहीं होता, जिसमें प्रभ कारक तथा प्रभाव के संबंध को न जाने। ज्ञान बनने के लिए, एक संश्लेषणात्मक निर्णय आवश्यक होना चाहिए तथा वह शार्कभौतिक नहीं होना चाहिए अर्थात् इसमें संदेह का कोई स्थान नहीं होता। शार्कभौतिकता तथा आवश्यकताओं का स्त्रोत इन्द्रियों न होकर तथा इनकी दृक-श्रवण होता है। बहुत से कथन, कहावतें तथा कथित तथ्य जिनका हम दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं वे सभी प्राबुधभाविक ज्ञान के अंतर्गत आते हैं।

(2) प्रायोगिक ज्ञान (Empirical Knowledge): - प्रायोगिक ज्ञान अनुभवों से प्राप्त किया जाता है। यह हमें दृचना देता है, उदाहरण के रूप में इस प्रकार के गुण होते हैं या वह इस प्रकार से व्यवहार करता है। हम यह नहीं कह सकते कि एक श्रेणी की कुछ वस्तुओं में कुछ विशेष गुण पाए जाते हैं इसलिए सभी में ये गुण पाए जाते हैं। ऐसा ज्ञान वैज्ञानिक नहीं होता। प्रायोगिक अनिर्णय हमारे ज्ञान में बर्द्ध करते हैं परन्तु इस प्रकार का प्राप्त किया गया ज्ञान अनिश्चित तथा त्रप रचनात्मक होता है। यह ज्ञान इन्द्रियगत और वाच्य जगत के अवलोकन, निरीक्षण तथा प्रमुख के स्वयं के अनुभव, अवलोकन तथा निरीक्षण से प्राप्त होता है। इसलिए कहा जाता है कि इन्द्रियों ज्ञान का द्वार होती हैं।

ज्ञान के स्रोत :- (Source of Knowledge): - ज्ञान विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है। स्रोत प्रमुख से, उलकी कर्षा-प्रणाली से तथा अन्य वाच्य माध्यमों से संबंधित है। प्रमुख स्रोत है :-

(1) इन्द्रिय अनुभव :- हमारे ज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत इन्द्रियानुभव है। हम अवलोकन, श्रवण, दूकर, महसूस करके तथा स्वाद के द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन्द्रियों की सहायता से प्राप्त ज्ञान को इन्द्रिय ज्ञान कहा जाता है। यह ज्ञान स्यासी ज्ञान बन जाता है। यह स्रोत प्राथमिक तथा वास्तविक है।

② तर्क :- तर्क ज्ञान का द्वितीय स्त्रोत है। तर्क की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति अनुभव प्राप्त करता है और यह ज्ञान बन जाता है। तर्क बुद्धि की ओर संकेत करता है। बुद्धि का कार्य कल्पना, करना, सोचना, विचारना व तर्क देना है। तर्क मानसिक एवं बौद्धिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के प्राथमिक से मुख्य अपना कोई मत बनाता है या किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है।

③ अधिकारी :- ( Authority ) → अधिकारी भी क्रिया का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। कुछ व्यक्ति जैसे - अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्री, इंजीनियर आदि अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। विभिन्न वैज्ञानिक अपने प्रयोगों के आधार पर अपने नियमों और सिद्धांतों के अधिकारी बन जाते हैं।

④ अन्तः प्रज्ञा :- ( Intuition ) - ज्ञान का एक अन्य महत्वपूर्ण स्त्रोत है - अन्तः प्रज्ञा। अन्तः प्रज्ञा हमें हमारा सिद्धांत या आधारभूत प्रमाण देती है जिसके आधार पर हम विश्व के तार्किक सिद्धांत का निर्माण करते हैं।

⑤ प्रयोग विधि - इस विधि के अन्तर्गत प्रयोगशाला में किए गए प्रयोग के आधार पर ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह विधि भूगोल, मनोविज्ञान तथा भौतिक विज्ञान के विषयों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिक उपयुक्त है।

⑥ समस्या समाधान विधि :- प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता है। समस्या समाधान प्रक्रिया में प्रयोग किए जाने वाले पद्धत समाधान की ओर ले जाते हैं। समाधान प्राप्त करने की विधि से ही ज्ञान प्राप्त होता है।

⑦ व्यक्तिगत अनुभव :- मुख्य अपने अनुभवों की सहायता से भी ज्ञान प्राप्त करता है। व्यक्तिगत अनुभवों पर निर्मित ज्ञान प्राप्त करने की सामान्य व उपयोगी विधि है।

वास्तव में, ज्ञान प्राप्त करने की विभिन्न विधियां स्वयं में एक-दूसरे की पूरक हैं। इन्हें, तर्क अन्तः प्रज्ञा तथा अनुभव ज्ञान प्राप्त करने की विभिन्न विधियां हैं। प्रत्येक विधि का अपना महत्व है तथा ~~अनुभव~~ ज्ञान की खोज में प्रत्येक का अपना योगदान है। वास्तव में ज्ञान अनुभव है जिसे स्वयं या मास्टर के द्वारा संश्लेषित किया जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास के लिए ज्ञान अत्यावश्यक है।

Q.3.) ज्ञान के सृजन से क्या अभिप्राय है ? ज्ञान सृजन में अधिगमकर्ता की भूमिका का वर्णन करें।

Ans: - ज्ञान का सृजन :- आरंभ में बालक जिस चीज को देखता है उसके बारे में अपने मास्त्रिस्क में विचार करता है और उसकी दृष्टि अपने मास्त्रिस्क में बना लेता है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया जिसमें बच्चे ज्यादा व्यस्त होते हैं वहाँ अध्यापक की भूमिका बढ़ जाती है। बालक अपने ज्ञान का सृजन सीखने की प्रक्रिया के द्वारा स्वयं करता है। बच्चों की समझ को विकसित करने के लिए उनसे ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं जो वास्तविक दुनिया से भी संबंधित हों। बच्चों को रतन पदार्थ के बजाय अपने शब्दों में उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

विद्यालयों के द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए, जिससे बच्चे प्रश्न पूछकर व चर्चा के आनंद में विचार-विचारणाओं को समझ सकें तथा स्वयं ज्ञान का सृजन करें।

विद्यार्थी (अधिगमकर्ता)

अधिगमकर्ता में ज्ञान का निर्माण :- मनुष्य को चिन्तनशील व विनाशप्रणी माना जाता है। अपनी इस प्रकृति के कारण वह सदैव जानने के लिए उत्सुक रहता है। ज्ञान केवल किताबी छातों से संबंधित नहीं होता। यह एक ऐसा वरदान है जिसे मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण की जानकारी प्राप्त करने के द्वारा आरंभ करता है। लेकिन जैसे-जैसे उसका विकास होता जाता है वह अधिक-अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित होता जाता है।

अधिगमकर्ता अधिगम प्रक्रिया का अहम चरण है। अधिगमकर्ता के अभाव में अधिगम प्रक्रिया का अस्तित्व ही नहीं होता है। अधिगमकर्ता वह मनुष्य है जो कुछ भी सीख रहा है। वह किसी भी आयु का हो सकता है। उसका रक्तमात्र उद्देश्य अधिगम के द्वारा अपने व्यवहार, विचारों में सकारात्मक परिवर्तन लाना होता है। अतः उसे इन परिवर्तनों को अपने व्यवहार, विचारों में लाने के लिए विभिन्न क्रियाकलाप करने पड़ते हैं। अधिगमकर्ता को अधिगम प्रक्रिया में पूर्ण रूप से भाग लेना पड़ता है एवं इस प्रक्रिया के अन्तर्गत उसे विभिन्न उत्तरदायित्व को भी पूरा करना पड़ता है।

अधिगमकर्ता में ज्ञान का निर्माण :- ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपना-अपना मत प्रस्तुत किया है जो निम्नलिखित हैं :-

जीन पिथाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया :-

पिथाजे के अनुसार, ज्ञान एक सक्रिय प्रक्रिया है। वातावरण में उपलब्ध परावर्तों से जब हाज़ अन्वेषिका हाता अनुभव प्राप्त करते हैं तब इसकी परिचय अपने साधियों से करने पर अधिगम होता है। संज्ञानात्मक विकास का अर्थ व्यक्ति की उस प्रक्रिया से है जिसमें वह कृति करते समय चिन्तन करता है और सीखता है।

प्रौ० पिथाजे का मत है कि संज्ञानात्मक विकास विभिन्न अवस्थाओं में होता है जिससे व्यक्ति एक अलग प्रकार की संज्ञानात्मक रचना दर्शाते हैं। वस्तुतः संज्ञानात्मक संरचना एक व्यक्ति के ज्ञान का दूसरा नाम है।

जब कोई व्यक्ति नवीन ज्ञान अथवा नवीन विचार उसके वातावरण में पाता है तो आत्मीकरण तथा स्थानीयकरण होता है जिसमें पूर्व स्थित संज्ञानात्मक संरचना में रूपान्तरण होता है। यह रूपान्तरण नवीन विचार अथवा ज्ञान होता है और पहले वाले से भिन्न होता है। इससे व्यक्ति साम्यावस्था में आ जाता है। इसे विकसित संज्ञानात्मक संरचना कहते हैं।

वाइगोत्स्की के अनुसार ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया :-

वाइगोत्स्की का मानना था कि बच्चे व्यावहारिक अनुभवों के माध्यम से सीखते हैं जैसा कि पिथाजे ने कहा था। हालांकि पिथाजे के विपरीत उन्होंने दावा किया कि जब कोई बच्चा कोई नया काम सीखने के कगार पर होता है तब वयस्कों हाता प्राय पर और संवेदनशील दृष्टिकोण से बच्चों को नये कार्यों को सीखने में मदद मिल सकती है। इस तकनीक को ही "स्कैफोल्डिंग" या 'प्रदान करना' कहा जाता है। क्योंकि यह नये ज्ञान के प्राय बच्चों के पास पहले से मौजूद ज्ञान पर निर्भर होता है जिससे वयस्क बच्चों को सीखने में मदद मिलती है।

वाइगोत्स्की का ध्यान पूरी तरह से बच्चों के विकास की पद्धति का निर्धारण करने में संस्कृति की भूमिका पर केन्द्रित था उन्होंने तर्क दिया कि बच्चों के सांस्कृतिक विकास में हर कार्य ही बार प्रकट होता है। पहली बार सामाजिक स्तर पर और बाद में व्यक्तिगत स्तर पर। पहली बार लोगों के बीच और उसके बाद बच्चों के बीच। यह स्वैच्छिक ज्ञान, तार्किक स्पष्टि और अवधारणा निर्माण में समान रूप से लाभ होता है।

Q(4.) स्थानीय ज्ञान एवं विश्वव्यापी ज्ञान में क्या अंतर एवं संबंध हैं? किताब से वर्णन करें।

Ans. - स्थानीय ज्ञान वह ज्ञान है जिसे किसी समाज में लंबा एक निश्चित समय में विकसित कर लेता है और यह निरन्तर विकसित होता रहता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा 2005 में भी बच्चों के समुदाय और उनके स्थानीय वातावरण से प्राप्त ज्ञान को उनकी अधिगम प्राप्ति का प्राथमिक सन्दर्भ माना गया है। अपने स्थानीय परिवेश के साथ अन्तः क्रिया करके ही बच्चा ज्ञान दृषित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है।

इसके शब्दों में परंपरागत ज्ञान को स्थानीय या देशज ज्ञान के नाम से भी जाना जाता है। आमतौर पर यह लंबे समय से चली आ रही परिपक्व परंपराओं एवं कुछ क्षेत्रीय स्वदेशी या स्थानीय प्रथाओं को दर्शाता है। इसमें भी बुद्धि, ज्ञान एवं इन समुदायों की शिक्षाओं को शामिल किया जाता है। स्थानीय ज्ञान, शहरी एवं ग्रामीण लोगों की मानवीय बौद्धिक संपदा है जिसका प्रयोग वे अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करने में प्रयोग करते हैं। स्थानीय ज्ञान, कृषिक अंतः क्रिया से उत्पन्न ज्ञान है जो किसी स्थान विशेष के लोगों द्वारा अपने प्राथमिक, सामाजिक व आर्थिक वातावरण के <sup>आवृत्तियों के</sup> फलस्वरूप विकसित किया जाता है। स्थानीय या स्वदेशी ज्ञान दैनिक गतिविधियों के बारे में स्थानीय निर्णय लेने से संबंधित होता है, जैसे - शिकार एवं समा, प्रत्यक्ष पालन, कृषि, पशुपालन, जल संचयन एवं स्वास्थ्य आदि से संबंधित निर्णय।

औपचारिक वैज्ञानिक ज्ञान के विपरीत, स्थानीय ज्ञान आमतौर पर मौखिक ज्ञान के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित किया जाता है परन्तु कभी-कभी दस्तावेज या अन्य माध्यमों का भी प्रयोग लिया जाता है। यदि सभी प्रकार के ज्ञान का रिकॉर्डिंग कर दिया जाये उस स्थिति में भी स्थानीय या स्वदेशी ज्ञान अपनी व्यापकता एवं सामाजिक कारण के कारण श्रेष्ठ सिद्ध होगा तथा सतत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा जिसे कोई भी नकार नहीं सकता है।

स्थानीय परिवेश केवल बौद्धिक - प्राकृतिक नहीं होता बल्कि सामाजिक - सांस्कृतिक भी होता है। हर बच्चे की घर में अपनी आवाज होती है। स्कूल के लिए आवश्यक है कि कक्षा में भी वही आवाज घुमती जाय। समुदायों का सांस्कृतिक स्रोत भी बहुत होता है जैसे - लोक-कथाएँ, लोकगीत, चुटकुले, कलाएँ आदि जो स्कूल में भाषा और ज्ञान को समृद्ध बना सकते हैं। इससे मौखिक इतिहास भी समृद्ध होगा।

परन्तु हम प्रायः कक्षा में छात्र को चुपकाने का ही प्रयास करते रह जाते हैं। अतः आवश्यक है कि स्कूल में शिक्षक विद्यार्थियों को स्थानीय परम्पराओं और लोगों के पर्यावरण संबंधी व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित परियोजना तैयार करायें जिससे स्थानीय ज्ञान का लाभ अच्छे ढंग से उठा सके।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि स्थानीय ज्ञान :-

- ① अनुभव पर आधारित होता है।
- ② अक्सर शताब्दियों तक इलाका प्रयोग होता रहता है।
- ③ स्थानीय से प्रकृति व वातावरण के अनुकूल ढाला जाता है।
- ④ स्थानीय प्रथाओं, संस्थाओं, संवैधानों व प्रथाओं में उभा हुआ होता है।
- ⑤ व्यक्तियों या समुदायों द्वारा धारित होता है, गतिशील व परिवर्तनीय भी होता है।

स्थानीय ज्ञान केवल कुछ ग्राम निवासियों या आदिवासियों तक ही सीमित नहीं होता है बल्कि सभी समुदाय-चाहे ग्रामीण हो या शहरी, चुपचाप हो या एक ही जगह रहनेवाले हो, प्रवासी हो या प्रवासी ही सभी तक इनकी पहुँच होती है।

स्थानीय ज्ञान का महत्व :- हाल के वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय ज्ञान की अमूल्य एवं महत्व के बारे में चर्चा की जाने लगी है। इसमें बहुत कृषि तकनीक, कीट नियंत्रण, फसल विविधता, एवं कृषि में बीज विविधता, वनस्पतिक विविधता, जीव विज्ञान में मछली प्रजनन तकनीक, मानव स्वास्थ्य के मामले में प्रसूतिक पारंपरिक चिकित्सा, मृदा संरक्षण, सिंचाई आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन क्षेत्रों में स्थानीय ज्ञान के योगदान के परिणाम स्वरूप शिक्षाविदों एवं नीति-निर्माताओं को इसके महत्व पर ध्यान केंद्रित करने के लिए विवश किया।

सार्वभौमिक ज्ञान (Universal Knowledge) :- सार्वभौमिक ज्ञान पर आधारित होता है तथा देश व काल की सीमाओं से परे होता है। भौतिकी व गणित के सिद्धांत व नियम सार्वभौमिक ज्ञान के अन्तर्गत हैं जो स्वर्ण नियम होते हैं व उनमें बदलाव नहीं होता है। इस प्रकार के ज्ञान के उदाहरण हमें सार्वभौमिक तथ्यों के रूप में दिखने को मिलते हैं। इसे प्रागनुभव ज्ञान भी कह सकते हैं क्योंकि यह स्वतः सिद्ध होता है। इसे निरीक्षण अनुभव द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का ज्ञान प्रयोग, निरीक्षण व अनुभव पर आधारित होता है।



Q(5) वेदान्त दर्शन से आपका क्या अभिप्राय है ? इसके अनुसार शिक्षा के प्रदान की जानी चाहिए ।

Ans 1 - वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन का सबसे अग्रिम भाग माना जाता है। समस्त आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर वेदान्त दर्शन में उपलब्ध होता है। क्योंकि वेदान्त का मूल उपनिषदों में निहित है। उपनिषद से अभिप्राय : उप + निषद उप का अर्थ निकट अथवा समीप "नि" निश्चयात्मकता का घेतक है। अतः उपनिषद का अर्थ वह विद्या जो अविद्या का नाश करती है और मोक्ष के समीप ले जाती है। वेदान्त शब्द का शैविक अर्थ है वेद का अन्त अथवा वे सिद्धांत जो वेदों के अंतिम अध्यायों में प्रतिपादित किये गये हैं और ये ही उपनिषद हैं।

वेदान्त के अनुसार शिक्षा का अर्थ :- वेदान्त के अनुसार शिक्षा का सही अर्थ क्रम ज्ञान तथा आत्मसाक्षात्कार है। इसके अनुसार शिक्षा का इकाग्र उद्देश्य विद्यार्थी को अविद्या तथा अन्धकार से मुक्ति दिलाना है। मुक्ति केवल स्वाध्याय के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। व्यक्ति स्वयं को सही ढंग में प्रशिक्षण कर ले जो उसे मोक्ष की प्राप्ति करा सके।

वेदान्त के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :- वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य वही ही सकते हैं जो विद्यार्थी को विद्या अविद्या के भेद के बारे में ज्ञान कराए। अज्ञान से मुक्ति दिलाने, वेदान्त दर्शन की तालिका हरि से शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम :- वेदान्त दर्शन के अनुसार बालक को सांसारिक ज्ञान एवं क्रम ज्ञान से संबंधित सभी विषयों का अध्ययन पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। लौकिक अथवा सांसारिक ज्ञान से संबंधित जड़ एवं चेतन दोनों पदार्थों से संबंधित विषयों को सम्मिलित करना चाहिए। इसके पश्चात् बालक को "सा विद्या या विमुक्तये" से संबंधित ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इसमें - आध्यात्म शास्त्र को ही मुख्य स्थान दे सकते हैं।

वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियाँ :- इन पाठ्यक्रम से संबंधित सभी विषयों को आत्म ज्ञान कर ले किसी भी प्रकार की विद्या को ग्रहण करने में असहज महसूस न करे, इसलिए उचित शिक्षण विधियों की आवश्यकता होती है। वेदान्त दर्शन में अनेक शिक्षण विधियाँ हैं जो निम्न हैं-

- 1) उपासना
- 2) इकाग्रता
- 3) स्मरण
- 4) स्वाध्याय
- 5) उपदेश
- 6) तर्क वितर्क
- 7) इन्द्रिय प्रयोग
- 8) भक्ति
- 9) समर्पण भाव ।

वेदान्त दर्शन के अनुसार विद्यालय :- आधुनिक शिक्षा या शिक्षा संस्था के बारे में वेदान्त दर्शन कुछ विशेष विचार नहीं रखते हैं। परन्तु ब्रह्मसूत्र के सूत्रों में ऐसे अर्थव्यक्त संकेत प्राप्त होते हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शिक्षा-संस्था अथवा विद्यालय किसी ज्ञान वातावरण में ही प्रतिस्थापित होना चाहिए। जहाँ मन व कायता के साथ निरिच्छा रूप से अध्ययन का प्रारंभ हो।

वेदान्त दर्शन के अनुसार द्वात्र :- वेदान्त "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ का समर्थक रहा है। अतः बालक भी ब्रह्म का अंशद्वारा पड़ता है। बालक में भी वे सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं जो उस परम पिता परमात्मा में हैं जिसको वेदान्त ने ब्रह्म की संज्ञा प्रदान की है। बालक अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्तियों एवं अनन्त क्रियाओं से युक्त सर्वगुण सम्पन्न है। बालक का आश्रित स्वतंत्र है वह मन, बुद्धि तथा आत्मा का पुंज है। जो बुद्धि अश्रित एवं बुद्धि प्रकाश से ही अपने को चैन्य समझता है?

वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षक :- यदि बालक ब्रह्म का अंश है तो शिक्षक ऐसा होना चाहिए जो बालक को ब्रह्म का ज्ञान कराये अर्थात् ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। अध्यापक ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकता है जब वह निरंतर अध्ययन के लिए तपस्या-रत रहे और उस परम ज्ञान की अनुभूति करे। द्वात्रों की अपेक्षा अध्यापक को ज्ञान, आचरण, संकल्प, निर्णयात्मक, बुद्धि आदि में उच्च स्तर का होना चाहिए। अध्यापक का आचरण बालकों के लिए अनुकरणीय होना चाहिए। वेदान्त दर्शन में बुद्धि ही सर्व श्रेष्ठ है और श्रेष्ठता को अध्यापक द्वारा प्रेरित बनाकर रखा जाना चाहिए।

अतः वेदान्त दर्शन जीवन को श्रेष्ठतर बनाने की संकल्पना है। वेदान्त शिक्षा का यही उद्देश्य है कि व्यक्ति पारिवारिक प्रवृत्तियों को त्याग कर मानवोचित गुणों से युक्त व्यवहार की यही वेदान्ती शिक्षा की अवधारणा है। वेदान्त दर्शन ज्ञान की रक्षा एवं तत्व प्रीति का पर अधिक जोर देता है। ज्ञान प्रीति का अन्तर्गत सभी ज्ञान, विद्या, अविद्या तथा ब्रह्म की धारणा की गई है। तथा तत्व प्रीति के अन्तर्गत प्रकृति व जीव के संबंध को बताया गया है।

Q16.) दर्शन एवं शिक्षा में क्या संबंध है? विचार से चर्चा करें।

Ans - दर्शन शब्द अंग्रेजी भाषा के फिलॉसफी (Philosophy) शब्द का रूपान्तरण है। फिलॉसफी जिन दो शब्दों के मेल से बना है वे हैं ① फिलीन और ② लोफिया। फिलीन का अर्थ है - प्रेम या अनुराग और लोफिया का अर्थ है - ज्ञान, विद्या। इस प्रकार फिलॉसफी का अर्थ हुआ - 'विद्या-अनुराग'। अतः 'फिलॉसफी' का शाब्दिक अर्थ Love of Wisdom अर्थात् ज्ञान के प्रति प्रेम है। अतः जो व्यक्ति ज्ञान के प्रति प्रेम रखता है उसे हम दार्शनिक कह सकते हैं। प्लेटो के अनुसार - " जो व्यक्ति ज्ञान-प्राप्ति और नई बातों को जानने में रुचि रखता है और जो कभी संतुष्ट नहीं होता दार्शनिक कहलायेगा।" सुकरात के अनुसार - " सच्चे दार्शनिक वे हैं, जो सत्य ज्ञान के प्रेमी हैं।" फिक्टो के अनुसार - " दर्शन ज्ञान का विज्ञान है।"

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार :- दर्शन शब्द संस्कृत की 'दृश्' धातु से बना है जिसका अभिप्राय है "देखना"। अब प्रश्न होता है कि क्या देखना? दर्शन कहता है "तत्वों की देखना अर्थात् सृष्टि के विभिन्न तत्वों को ज्ञानरूपी नेत्र से देखना" कहा भी गया है कि "इत्यते अनेन इति दर्शनम्" अर्थात् वह विज्ञान जिसको देखकर जाना जाये।

अतः विश्लेषणात्मक रूप से दर्शन सत्य की खोज का नाम है। दार्शनिकों ने भी विविध रूपों में इसे व्यक्त किया है।

दर्शन और शिक्षा में संबंध :-

दर्शन और शिक्षा का पारस्परिक संबंध है। इनका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। यदि एक में परिवर्तन होता है, तो दूसरे में भी परिवर्तन होता है। इसलिए रडमस, फिक्टो, रॉस, जेस्टेल आदि शिक्षा दार्शनिकों ने दोनों के संबंध को अन्यान्याश्रित माना है।

वास्तव में, दर्शन तथा शिक्षा घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। दर्शन मानव जीवन के विभिन्न पक्षों पर विचार करता है और उसके लिए लक्ष्यों का निर्धारण करता है। इन लक्ष्यों की उपलब्धि ही मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य है।

शिक्षा वह साधन है जो इन लक्ष्यों की प्राप्ति में मानव की सहायता करते हैं। शिक्षा द्वारा ज्ञान, चिंतन एवं कौशल का विकास किया जाता है जो पुनः दर्शन को नया परिष्कृत रूप देते हैं। नवीन परिष्कृत दर्शन नवीन शिक्षा को जन्म देता है। इस प्रकार दर्शन व शिक्षा का एक दूसरे को सुधारने का यह चक्र अनवरत चलता ही रहता है। तभी तो जॉन डीवी ने कहा है कि - "आपनी सधारण अवस्था में शिक्षा-सिद्धांत ही दर्शन है।" शिक्षा तथा दर्शन के मध्य परस्पर संबंध

निम्नांकित बिन्दुओं से भी स्पष्ट है :-

① दर्शन शिक्षा के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। - दर्शन शिक्षा के हर पहलू व क्षेत्र को प्रभावित करता है। हम पाते हैं कि शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षण-विधि, पाठ्य-पुस्तकें तथा प्रशासन गैली आदि सब कुछ दर्शन द्वारा प्रभावित होती है।

② जीवन में शिक्षा के महत्व की खोज दर्शन द्वारा की जाती है - यह सर्वविदित है कि दर्शन में नये गैलिक-तथ्य नहीं होते हैं। दर्शन तो केवल उन गैलिक तथ्यों व तत्वों की खोज करता है जो पहले से ही मौजूद होते हैं। दर्शन इन तत्वों के प्रकाश में जीवन में शिक्षा के महत्व की खोज करता है। जिस प्रकार चर्म, राज्य, कला आदि का दर्शन होता है वीक दुसरी प्रकार शिक्षा का का अपना दर्शन होता है जिसे शिक्षा दर्शनशास्त्र कहते हैं। यह शिक्षा से संबंधित तथ्यों की खोज करता है।

③ दर्शन शिक्षा की प्रकृति को समझने में सहायता देता है - दर्शन के अभाव में हम शिक्षा की प्रकृति को नहीं समझ सकते हैं। दर्शन की सहायता से ही हम शिक्षा के लक्ष्य, उद्देश्य, पाठ्यक्रम शिक्षा-विधि आदि को समाज के प्रचलित दर्शन के संदर्भ में समझते हैं। दर्शन के अभाव में हम समाज में प्रचलित गैलिक विचारों को समझ नहीं सकते हैं।

④ दर्शन एवं शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं - रॉसने लिखा है - "दर्शन एवं शिक्षा एक सिक्के के दो पहलू के समान हैं। एक में दूसरा निहित है। दर्शन जीवन का विचारालोक पक्ष है और शिक्षा क्रियात्मक पक्ष है।

⑤ शिक्षा दर्शन को जीवित रखती है - उपरोक्त विवरण से लगता है कि जैसे दर्शन ही प्रद्वैत शिक्षा को प्रभावित करता है, वैसे ही शिक्षा भी दर्शन को प्रभावित करती है। शिक्षा के अभाव में दर्शन जिंदा नहीं रह सकता है। शिक्षा मनुष्य के चिंतन को उन्नत एवं परिष्कृत करती है और मनुष्य अपने उन्नत चिंतन से ही कर्मों, दृष्टि, सत्य, आत्मा, परमात्मा आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है।

~~उपरोक्त~~ उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है

कि दर्शन एवं शिक्षा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, एक-दूसरे पर आधारित हैं तथा एक दूसरे से अविच्छेद रूप से संबंधित हैं। वास्तव में दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

Q(7.) प्रयोजनवाद से आप क्या समझते हैं? इनके सिद्धांतों का वर्णन करें।

Ans: - प्रयोजनवाद शब्द का अर्थ है व्यवहार या क्रिया। Pragmatism का अर्थ है PRACTICAL अतः इसका हिन्दी अर्थ व्यावहारिक होगा। अतः इसको व्यवहारवाद कहते हैं क्योंकि यह उन्मुख, विचार, कार्य एवं सिद्धांतों पर विश्वास करता है, जिनकी व्यावहारिक उपयोगिता होती है।

हिन्दी में 'प्रेगमैटिज्म' को 'प्रयोजनवाद' भी कहते हैं क्योंकि यह विचारधारा उद्देश्यपूर्ण क्रिया को महत्व देती है और सत्य को प्रयोजन की कसौटी पर कसती है। कुछ इसको फलवाद भी कहते हैं क्योंकि यह विचारधारा सत्य का निर्णय प्रयोगों के परिणाम के आधार पर करती है। कुछ दार्शनिक प्रेगमैटिज्म को रैमिनिक्वाद भी कहते हैं क्योंकि उनके अनुसार विचार मस्तिष्क की क्रिया के रूप में होते हैं और मस्तिष्क इन क्रियाओं को चलाने के लिए एक उपकरण के रूप में होता है।

प्रयोजनवाद मानव अनुभवों में सत्य ढूँढता है, अतएव इसे मानववाद भी कहते हैं। प्रयोजनवाद चूंकि विज्ञान की प्रयोग संबंधी विधियों पर बल देता है। इसलिए यह प्रयोगवाद भी कहलाता है। विज्ञान के क्षेत्र में जब इसके द्वारा विज्ञान को अनुभवों की पुनर्रचना कहा गया तो प्रयोजनवादी विचारधारा पुनर्रचनावाद के नाम से प्रसिद्ध हुई।

रैसने के अनुसार - " प्रयोजनवाद के अनुसार, सत्य को उसके व्यावहारिक परिणामों के द्वारा जाना जा सकता है और इसलिए सत्य न होकर व्यावहारिक या सामाजिक समस्या है। "

रैसने के अनुसार - " प्रयोजनवाद " एक मानवीय दर्शन है जो यह मानता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह मानता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है। "

अतः प्रयोजनवाद किसी चिंतन सत्य में विश्वास न करके सत्य को परिवर्तनशील मानता है। संसार की समस्त वस्तुओं और क्रियाओं को मानव उपयोगिता की दृष्टि से देखता है और व्यावहारिक उपयोगिता वाली क्रियाओं या विचारों को सत्य मानता है।

प्रयोजनवाद के मूल सिद्धांत (Basic Principles of Pragmatism)

① सत्य की परिवर्तनशीलता - प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य परिवर्तनशील है, यह देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता है।

② उपयोगिता का सिद्धांत: - प्रयोगवाद के अनुसार किसी भी सिद्धांत की कसौटी उपयोगिता है, यदि सिद्धांत, विचार का फल अच्छा है तो उपयोगी होगा अन्यथा नहीं, जो सिद्धांत, विचार या वस्तु हमारे लिए उपयोगी है।

वही हमारे लिए उपयुक्त है और उसी को हमें ग्रहण करना चाहिए।

③ क्रिया की प्रधानता का सिद्धांत :- प्रयोजनवाद के अनुसार विचार सदैव क्रिया से ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए यह विचारों की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देती है।

④ लड़तत्ववाद का सिद्धांत :- प्रयोजनवाद इस प्रकार की अनेक तत्वों से निर्मित मानता है, इस प्रकार यह इक्त्वाद या हैतवाद के स्थान पर लड़तत्ववाद का समर्थन करता है।

⑤ सामाजिक जीवन पर बल - प्रयोजनवाद मानता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः समाज में ही उसका जीवन विकसित होता है, समाज से बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा :-

प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है जो सामाजिक पर्यावरण में चलती रहती है। इसके द्वारा समाज की संस्कृति का संरक्षण, संवहन और विकास किया जाता है, मनुष्य में वह सब क्षमताएँ उत्पन्न की जाती हैं, जिन्हें कि वह अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण में समायोजन करता है और अपने अक्षमताओं द्वारा उनमें परिवर्तन करता है।

" शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओं का विकास है जो उसमें अपने पर्यावरण पर नियंत्रण रखने तथा अपनी प्रभावनाओं को पूर्ण करने का सामर्थ्य प्रदान करे।" - जॉन ड्यूवी

जॉन ड्यूवी के अनुसार किसी वस्तु की सच्ची उपयोगिता यही है कि वह मानव कल्याण के लिए उपयोगी हो। शिक्षा को भी उपयोगी वही समझा जा सकता है जब उसके विभिन्न अंगों का संतुलित मानव के कल्याण से हो। यदि शिक्षा अथवा शिक्षण संस्थाएँ मानव के लिए हितकारी हैं तो ठीक हैं, अन्यथा इन्हें भी बदल देनी चाहिए। प्रयोजनवाद का अरुणंद विश्वास है कि किसी भी शिक्षा प्रणाली को समाज की बदलती हुई परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए सदैव के लिए अंतिम नहीं कहा जा सकता। समाज में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन के साथ इसमें भी परिवर्तन आवश्यक है। प्रगतिशील समाज में केवल वही शिक्षा अथवा शिक्षण संस्थाएँ जीवित रह सकते हैं, जो समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार लचीली हो।

Q(8.) पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रकृति एवं चरकों की चर्चा करें।

Ans:- पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी भाषा के Curriculum शब्द का हिन्दी है। जिसका अर्थ है दौड़ का मैदान (Race Course) यहाँ पर ही शब्द दौड़ का मैदान प्रयुक्त है। दौड़ का अर्थ दौड़ों द्वारा प्राप्त अनुभव एवं उनकी शिक्षाओं से है तथा "मैदान" का अर्थ पाठ्यक्रम से है। दूसरे शब्दों में कीवचलम वह क्रम है जिसे किसी व्यक्ति को अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए पार करना होता है। यह वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षा व जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। शिक्षक पाठ्यक्रम की सहायता से अपनी शिक्षण क्रियाओं को पूरा करते हैं। जिससे द्वात्र अनुभव तथा क्रियाएँ करके अपना विकास करता है। शिक्षक की दृष्टि से पाठ्यक्रम एक दिशा एवं साधन है जिसका अनुशरण करके शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति करने का प्रयास किया जाता है। पाठ्यवस्तु के व्यवस्थित रूप को पाठ्यक्रम कहा जाता है। जो छात्रों की आवश्यकता अनुसार तैयार किया जाता है जिससे द्वात्र एवं शिक्षकों को ज्ञात होता है कि क्या पढ़ाया जाए तथा क्या पढ़ा जाय।

क्रिंघम के अनुसार - " पाठ्यक्रम कलाकार ( शिक्षक ) के हाथ में एक अंत्र है जिससे वह अपनी शामग्री ( विद्यार्थी ) को अपने आदर्श ( लक्ष्य ) के अनुसार अपनी कलाग्रह ( विद्यालय ) में मोड़ता है।

मुनरी के अनुसार - " पाठ्यक्रम में वह समस्त अनुभव निहित हैं जिनको विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है।"

पाठ्यक्रम के उद्देश्य :- किसी भी विषय के शिक्षण को प्रारंभ करने से पूर्व उसका पाठ्यक्रम निश्चित करना अनिवार्य है। क्योंकि उसी के आधार पर विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाता है तथा उसी के आधार पर सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का मूल्यांकन किया जाता है। पाठ्यक्रम के संवर्धन में प्राथमिक शिक्षा आयोग ने अपने विचार इस प्रकार स्पष्ट किये हैं -

" पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैदानिक विषयों से नहीं है जो विद्यालयों में परम्परागत रंग से पढ़ाये जाते हैं। वरन् इसमें अनुभवों की वह संपूर्णता निहित है, जिनको विद्यार्थी विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोग-शाला, कार्यशाला, खेल के मैदान तथा शिक्षक व शिक्षार्थियों के अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है। इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम ही जाता है। जो विद्यार्थी के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर सकता है और उसके संतुलित व्यक्तित्व के विकास में प्रयोग देता है। "

पाठ्यक्रम की आवश्यकता, महत्व एवं कार्य विभिन्न प्रकार हैं-

① शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक :- बिना उद्देश्य के चलने वाली शिक्षण प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जैसे पतवार के बिना गाव । इन उद्देश्यों की प्राप्ति करने में पाठ्यक्रम ही सहायता करता है । यह एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से हम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं तथा उपयुक्त पाठ्यक्रम के अभाव में हम शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति करने के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकते ।

② विषय - सामग्री के विभाजन में सहायक - पाठ्यक्रम ही विषय-सामग्री के निर्धारण के साथ इस बात का भी निर्धारण करता है कि वह विषय - वस्तु किस प्रकार विभिन्न स्तरों के अनुरूप है । पाठ्यक्रम छोटी कक्षाओं के लिए सरल व सीधे विषय वस्तु का चुनाव देता है । माध्यमिक कक्षाओं के लिए तर्कपूर्ण व तानवर्द्धक अध्ययन - वस्तु का निर्देशन करता है तथा उच्च कक्षाओं के लिए गहन व चिंतनशील तथा प्रयोगात्मक अध्ययन-क्रम की रूपरेखा रखता है । विभिन्न स्तरों के अनुरूप विषय वस्तु का विभाजन वैज्ञानिक एवं उचित ढंग से करने में पाठ्यक्रम ही सहायता करता है ।

③ अनुसंधान एवं आविष्कार में सहायक :- पाठ्यक्रम केवल अध्ययन-वस्तु तक ही सीमित न होकर एक व्यापक अवधारणा है । वर्तमान पाठ्यक्रम में बालक की केन्द्र बनाकर भावी जीवन की तैयारी के उद्देश्य से, अभी आवश्यक कार्यक्रमों को प्रस्तावित किया जाता है । पाठ्यक्रम उच्च स्तर पर छात्रों को अनुसंधान एवं नित्य नवीन खोज करने के लिए विषय वस्तु, क्षमता एवं पूर्ण वसुधोक्त प्रदान करता है ।

④ व्यक्तित्व के विकास में सहायक :- बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है । इस उद्देश्य की प्राप्ति करने में पाठ्यक्रम अपना पूर्ण योगदान करता है ।

पाठ्यक्रम अनेक महत्वपूर्ण कार्य संचालित करता है । पाठ्यक्रम का सम्पूर्ण शिक्षा - प्रक्रिया में अपना एक विशिष्ट महत्व है । उपर्युक्त कार्यों को करने के कारण इसकी उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है । पाठ्यक्रम के द्वारा ही शिक्षण - अधिगम की प्रक्रिया सुचारु रूप से चलती रहती है । इसके अभाव में ऐसा होना संभव नहीं है ।



Q(9.) पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिद्धान्तों की चर्चा करें। इसको प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं ?

Ans:- पाठ्यक्रम संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र होती है। यह वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था घूमती है। पाठ्यक्रम का निर्माण एवं विकास करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना अत्यंत आवश्यक है-

① बाल केन्द्रिता का सिद्धान्त - (Pinnacle of Child Centredness):- पाठ्यक्रम निर्माण के समय बालकों को पाठ्यचर्चा का केन्द्र बिन्दु बनाकर तथा बालकों के पूर्ण विकास को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सम्पूर्ण पाठ्यचर्चा बालकों की रुचियों, क्षमताओं, योग्यताओं, आवश्यकताओं, मनो-वृत्तियों के अनुरूप होना चाहिए। बालक की आज की आवश्यकताओं के साथ-साथ आने वाले काल की परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। बालक प्रकृति से सक्रिय होता है तथा पाठ्यचर्चा उनकी क्रिया के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए।

② व्यापकता का सिद्धान्त (Pinnacle of Broadness):- पाठ्यक्रम निर्माण के समय व्यापकता को आधार बनाकर कार्य किया जाना चाहिए। पाठ्यचर्चा का क्षेत्र संकुचित न होकर व्यापक व विस्तृत होना चाहिए। पाठ्यक्रम के अंतर्गत सभी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, सामुदायिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्रियाओं एवं प्रवृत्तियों का समावेश होना चाहिए, जिनकी सहायता से बालकों का सम्पूर्ण विकास किया जा सके।

③ उपयोगिता का सिद्धान्त :- (Pinnacle of Utility):- इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों व क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए जो उनके लिए उपयोगी हों तथा जीवनयापन में सहायता कर सकें। यह सिद्धान्त शिक्षा दर्शन की प्रयोजनवादी धारा से प्रभावित है।

④ दूरदर्शिता का सिद्धान्त (Pinnacle of Longevity) → पाठ्यक्रम निर्माण के दौरान दूरदर्शिता के सिद्धान्त का भी पालन करना चाहिए। इसके अनुसार बालक का पाठ्यक्रम ऐसा ही जो उसे आगे की जीवन के अनुरूप ढाल सके। पाठ्यक्रम बालक के सकल जीवन थापन के उद्देश्य से, उसके भविष्य में आने वाली समस्याओं को समझने व उनका समाधान करने योग्य बनाने वाला होना चाहिए।

⑤ रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त :- बालकों में रचनात्मक प्रवृत्ति अत्यधिक होती है, प्रत्येक बालक में सृजनात्मकता तथा रचनात्मकता अलग-अलग होती है। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए जिससे उनकी रचनात्मकता एवं सृजनात्मकता शक्तियों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके।

⑥ अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत - पाठ्यक्रम निर्माण में इस तथ्य को भी स्थान दिया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा होगा - चाहिए जिससे बालक अपने अवकाश के समय का पूर्ण उपयोग कर सके। इसके लिए पाठ्यचर्चा में खेलकूद, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रियाओं, सांख्यिक कार्य, सौंदर्यात्मक एवं अन्य उपयोगी क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए।

⑦ प्रेरणा का सिद्धांत - पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत में प्रेरणा या प्रोत्साहन का सिद्धांत विशेष महत्व रखता है। बाल मनोविज्ञान के अनुसार बाली 'प्रेरणा' अधिगम हेतु एक महत्वपूर्ण कारक होता है। यदि बालकों का पाठ्यचर्चा रुचिकर एवं अध्ययन एवं अधिगम हेतु प्रेरित करने वाला होगा तो बालक शीघ्र व सरलता से समस्त ज्ञान संबंधी क्रियाओं को सीख लेंगे तथा सीखा हुआ समस्त ज्ञान स्थायी होगा।

⑧ सह-संबंध का सिद्धांत - पाठ्यक्रम के निर्माण में सह-संबंध का सिद्धांत अत्यंत महत्व रखता है। इन सिद्धांत के अनुसार पाठ्यचर्चा में वे विषय ही सम्मिलित किये जाते - चाहिये जिनका आपस में संबंध हो। - क्योंकि ज्ञान एक इकाई है अतः विषयों को टुकड़ों में विभाजित करके नहीं अपितु सम्मिलित करके पढ़ाया जाना चाहिए। अलग-अलग विषयों वाला संवित पाठ्यचर्चा प्रभावशाली नहीं होता है जबकि यदि विषयों में परस्पर संबंध हो तो बालकों का अधिगम सरल, सुगम, प्रभावी एवं स्पष्ट हो जाता है।

~~विज्ञान~~ पाठ्यक्रम निर्माण को प्रभावित करने वाला

तत्व :- ① मनोवैज्ञानिक तत्व - मनोविज्ञान ने आधुनिक काल में अत्यंत प्रगति की है। इस प्रगति के कारण पाठ्यक्रम का निर्माण विधियों द्वारा किया जाता जो शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है।

अतः मनोवैज्ञानिक तत्वों में बालक की मानसिकता रुचि इत्यादि का स्थान रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि बालक की रुचि व मानसिकता बालक के पाठ्यक्रम को प्रभावित करती है।

② सामाजिक तत्व :- पाठ्यक्रम निर्माण में समाज का महत्वपूर्ण स्थान है। बिना समाज के प्रभाव के व्यक्ति द्वारा कुछ सीखा नहीं जा सकता है। क्योंकि बालक की आरंभ से अंत तक समाज में ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण का रूप क्रीडा या

अपरिवर्तित नहीं होना चाहिये ।

② वैज्ञानिक तत्व - वर्तमान समय में विज्ञान ने अत्यंत प्रगति कर ली है। जीवन का साधन ही कोई ऐसा पदार्थ ही जिन पर वैज्ञानिक प्रभाव न पड़ा हो। वैज्ञानिक विषयों को अधिक महत्व देने वाले मुख्य प्रतिपादक हार्वर्ट स्पेन्सर हैं। स्पेन्सर महोदय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य पूर्ण जीवन के लिए तैयारी मानते हैं। वह मानते हैं कि इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम में निम्नलिखित कार्य शामिल करने चाहिए :- ① आत्म रक्षा के कार्य शामिल हो। ② जीवन की आवश्यकता को प्राप्त करने के लिए कार्य ③ सामाजिक व राजनीतिक कार्य। ④ अवकाश के समय के कार्य।

Q (10.) 'पाठ्यक्रम उत्पाद के रूप' एवं 'पाठ्यक्रम प्रक्रिया के रूप में' सिद्धान्तों की चर्चा करें।

'पाठ्यक्रम एक उत्पाद के रूप में'

Ans: → पाठ्यक्रम के सिद्धान्त को विचारों का अध्ययन भी कहा जाता है। सबसे पहले 1928 में येल (Yale) रिपोर्ट *Reference on Classes* प्रकाशित हुई जिसे बाद में अध्ययन की विषयवस्तु पाठ्यक्रम का विषय बन गया। वर्तमान में यह विषय - वस्तु अर्थात् उत्पाद का सिद्धान्त लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल करता है जिससे आने वाले समय के लिए छात्रों को उनकी भावी जीवन हेतु तैयार किया जा सके।

पाठ्यक्रम को प्रायः ज्ञान को हस्तान्तरित करने के एक ढाँचे के रूप में स्वीकार किया जाता है। सबसे पहले अरस्तु के प्रभाव में पाठ्यक्रम के सिद्धान्त को व्यवहार में लाया गया। उन्होंने ज्ञान को तीन अनुशासनों में बाँटा था।

Theoretical → Practical → Productive  
(सैद्धान्तिक) (प्रायोगिक) → (उत्पादक)

Syllabus → Process → Product  
(पाठ्यवस्तु) (प्रक्रिया) (उत्पाद)

इस प्रकार इसे सैद्धान्तिक, व्यावहारिक व Productive माना गया है। शरीर का ज्ञान ही सैद्धान्तिक पक्ष का मुख्य आधार है। व्यावहारिकता को प्रक्रिया के साथ जोड़ा गया है व तकनीक को Productive ज्ञान के साथ जोड़ा गया है। इन्हीं आधारों पर पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। इसमें छात्रों को

व्यवहार के लिए तैयार करके देश में उत्पादन के निर्माण के लिए तैयार किया जाता है।

सी० एच० ब्लूम (1962) ने पाठ्यक्रम को एक उत्पाद की इच्छा से देखते हुए व शिक्षा में सुधार हेतु शिक्षण व परीक्षा की क्रियाओं को उद्देश्य केन्द्रित बनाने पर बल दिया तथा कहा कि शिक्षण में जिन उद्देश्यों को महत्व दिया जाये उन्हीं उद्देश्यों के लिए परीक्षा भी किया जाये। इस इच्छा में पाठ्यक्रम निर्माण हेतु निर्मांकित दौपारों का अनुशासन किया जाता है :-

- ① शिक्षण उद्देश्यों का प्रतिपादन
- ② इन उद्देश्यों के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण
- ③ उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सीखने के अनुभवों का चयन
- ④ बालकों में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन

" पाठ्यक्रम एक प्रक्रिया के रूप में "

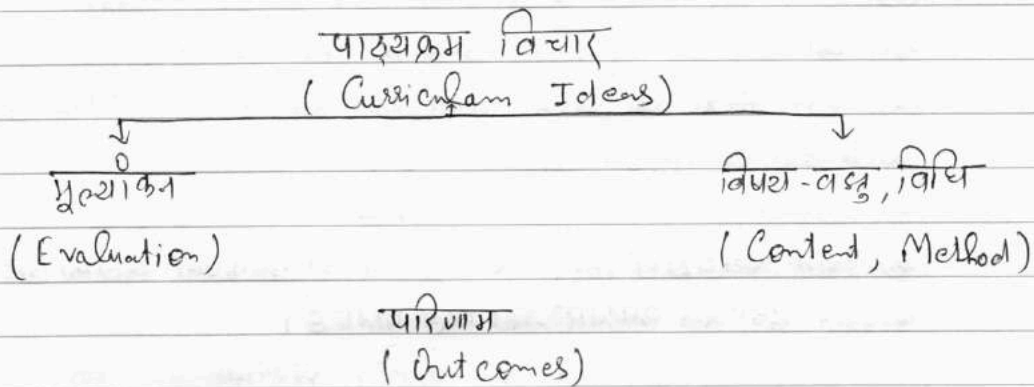
पाठ्यक्रम सिद्धांत को प्रक्रिया के रूप में भी लागू किया जाता है। इस प्रक्रिया के आधार पर पाठ्यक्रम केवल एक व्यवहारिक वस्तु नहीं बल्कि वह अध्यापकों, छात्रों व ज्ञान को आपस में जोड़ता है। पाठ्यक्रम वह है जो कहा में चर्चित होता है और लेका तथा तैयार करते हैं और उनका क्या मूल्यांकन निकलता है। इस मूल्यांकन में विभिन्न क्रियाओं का समन्वय होता है। इसी एक क्रियाशील प्रक्रिया जाना जाता है।

पाठ्यक्रम का प्रक्रिया प्रतिमान यह प्रकल्पित करता है कि विषय-वस्तु व अधिगम क्रियाओं की एक आन्तरिक मूल्य है और वे केवल अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन नहीं हैं और कि व्यवहारिक उद्देश्यों को प्रिभाषात्री संदर्भों में व्यक्त करना चाहिए।

पाठ्यक्रम को प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करने वाले प्रतिमानों में " लौकिक उत्पादन " अपनाया जाता है जो विषय वस्तु को अनुशासन में निहित चारणाओं के रूप में परीक्षण करता है जिसका केन्द्र एक विशेष सूचना, ज्ञान व कौशल होते हैं। इसमें यह विचार किया जाता है कि क्या कोर्स को प्रथम अग्रता आपक स्तर पर पढाया जाये। इस प्रकार प्रक्रिया आधारित प्रतिमान बहुत बड़े शिक्षक की अग्रवता पर निर्भर करते हैं और इसके लिए मानव वैध व विश्वसनीय मूल्यांकन बहुत कठिन होता है क्योंकि निष्पादन को व्याख्यायित उद्देश्यों के प्रदर्शन में न मापकर विचारों व

कोई विषय - वस्तु के संदर्भ में मापा जाता है। इसे निम्न क्रम द्वारा समझाया जा सकता है -

" प्रक्रिया प्रतिमान "



⑩(11.) समस्या केन्द्रित, अधिगमकर्ता केन्द्रित एवं अनुशासन केन्द्रित पाठ्यक्रम संरचना की चर्चा करें।

क्रि.स. → समस्या केन्द्रित पाठ्यक्रम :- पाठ्यक्रम शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन है। शैक्षणिक प्रशासन का कार्य पाठ्यक्रम निर्माण एवं दिन-प्रतिदिन के विकास से संबंधित समस्याओं का समाधान करना भी है।

समस्या केन्द्रित पाठ्यक्रम की बहुत अधिक कमियों के कारण उसे अपनाने में बहुत कम रुचि दिखलाई गयी। इन कमियों को दूर करने के परेश से बालकों की समस्याओं को नियंत्रित करने की योजना बनाई गयी। इस योजना के अन्तर्गत संबंधित दार्त्रों द्वारा अनुभूत समस्याओं को नियंत्रित करके उसके आधार पर पाठ्यक्रम को विभाजित करने का प्रयास किया जाता है। इसलिये इसे समस्या केन्द्रित संरचना कहा गया है।

विशेषताये :-

- ① इसमें कोई निर्धारित अन्तर्वस्तु न होने के कारण शिक्षक स्वतंत्रता पूर्वक कार्य कर सकता है।
- ② इसमें वास्तविक निर्देशन प्रदान करना संभव होता है।
- ③ इसमें व्यापक तथा मूलभूत लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है।
- ④ इसमें विषय वस्तु को छोड़ा या हटाया जा सकता है।
- ⑤ इस योजना में अधिगम स्वाभाविक ढंग से होता है।
- ⑥ इसमें दार्त्र सक्रिय रहते हैं।
- ⑦ इसमें आधुनिकतम कार्य विधियां अपनाई जाती हैं।

सीमायें: -

- ① इस संरचना के क्रियान्वन के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होती है।
- ② अधिकांश विद्वान अपरिपक्व बालकों द्वारा अनुभूत समस्याओं को ठीक आधार मानना उपयुक्त नहीं समझते।
- ③ ऐसे छात्रों की संख्या बहुत कम होती है जो समस्याओं को ठीक ढंग से अनुभूत कर सकते हैं।
- ④ समस्याओं की वास्तविकता संदिग्ध होती है।
- ⑤ इसमें पर्यवेक्षण करने तथा प्रगति का आंकलन करने का कोई निश्चित ढंग एवं आधार नहीं मिल पाता है।

"अधिगम कर्ता केन्द्रित संरचना"

अधिगमकर्ता केन्द्रित संरचना का अर्थ यह है कि पाठ्यक्रम बालक को केन्द्र मानकर बनाया जाता है। अतः पाठ्यक्रम का आयोजन भी बालक को केन्द्र मानकर किया जाता है। पाठ्यक्रम में विषयों की महत्व न देकर बालकों को महत्व दिया जाता है। पाठ्यक्रम का संगठन बालक की प्रकृति आवश्यकता रुचि के आधार पर किया जाता है। जिससे उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके।

हाज केन्द्रित पाठ्यक्रम संरचना की विशेषतायें: -

- ① इस संरचना में बालकों की परिवर्तित आवश्यकताओं, रुचियों, अभिरुचियों, संवेगों आदि को आधार बनाया जाता है। यह प्रयोगवादी विचारधारा पर आधारित है।
- ② हाज केन्द्रित पाठ्यक्रम की संरचना क्रियात्मक होती है।
- ③ यह छात्रों को उद्देश्यपूर्ण अनुभव प्रदान करती है।
- ④ यह बालकों पर सीखने का उत्तरदायित्व डालता है।
- ⑤ यह पाठ्यक्रम संरचना प्रयोगवादी दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। अनुशासन केन्द्रित पाठ्यक्रम संरचना  $\Rightarrow$  शिक्षा जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। शिक्षा को व्यवस्थित तथा बुचाह रूप से चलाने के लिए पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम ही एक ऐसा माध्यम है जिससे बालक को अच्छी शिक्षा प्रदान की जा सकती है। यह प्रत्यक्ष है बालक स्वभाव से चंचल होता है। इसी चंचलता से कई बार रेवती गलती कर जाता है जो उसको खिणित परिस्थिति में ला देता है। ये बालक के लिए हानिकारक है इसलिए पाठ्यक्रम अनुशासन की व्यवस्था की जाती है।

Q(18.) पाठ्यक्रम विकास से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न कार्यों की चर्चा करें।

किन्हीं : → पाठ्यचर्या विकास का एक विशेष क्षेत्र है, जिसमें अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें पाठ्यचर्या की अवधारणा, और अधिगम अनुभवों के विधिवत चयन और डिजाइन संबंधी कौशलों की इतनी जानकारी हो, जिससे वह पाठ्यचर्या द्वारा समाज के अभीष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो सके। पाठ्यचर्या विकास के कार्य में लगे व्यक्तियों पाठ्यचर्या विकास के विविध स्तरों का अनुपालन करना चाहिए। पाठ्यक्रम की सामान्य जानकारी से यह मालूम पड़ता है कि पाठ्यक्रम के अनेक आ-धार, अनेक सिद्धांत तथा अनेक नियम हैं। यदि पाठ्यक्रम के स्वरूप का निर्धारण किया जाता है तो सामाजिक विभिन्नता को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

पाठ्यचर्या निर्माण का कार्य एक विशेष प्रकार का कार्य है। इसके लिए इसमें प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों तथा दिये जाने वाले अधिगम अनुभवों और पाठ्यचर्या के क्रियाकलापों द्वारा लाए जाने वाले परिवर्तनों के मूल्यांकन आदि की सफ़ - सुगरी समझ होनी चाहिए। एक बुविचारित नियोजन और गतिशील पाठ्यचर्या निर्माण के लिए हमें निम्नलिखित चरणों का अनुशासन करना चाहिए।

① शिक्षण उद्देश्य - पाठ्यचर्या निर्माण या विकास करने के लिए हमें सर्व-प्रथम निर्माण या विकास हेतु उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है ताकि हमें ज्ञात हो कि हमें किस दिशा में आगे बढ़ना है अथवा निर्माण या विकास के द्वारा हम किन उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहते हैं।

② अनुदेशनात्मक प्रासप (Instructional friend) - शिक्षा के उद्देश्य सुनिश्चित करने के बाद यह सुनिश्चित किया जाता है कि बालकों को किस प्रकार से अनुदेशन प्रदान किया जाये। इसके लिए शिक्षण विधियों तथा पाठ्य-वस्तु की सहायता से इस प्रकार के अवसर एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जिनसे बालक जल्दी प्रकार से अधिगम कर सकें। इन शिक्षण विधियों व पाठ्य-वस्तु की सहायता से ही शिक्षण के विभिन्न निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

③ मूल्यांकन (Evaluation) - पाठ्यचर्या निर्माण या विकास की चक्रीय प्रक्रिया का तीसरा चरण है - मूल्यांकन या परीक्षण करना। इस चरण के द्वारा यह जांचा जाता है कि समस्त शिक्षण विधियाँ व पाठ्य-वस्तु का प्रयोग किस सीमा तक उपयोगी सिद्ध हुआ है। मूल्यांकन के द्वारा ही यह सुनिश्चित किया जाता है कि इन शिक्षण विधियों व पाठ्य-वस्तु

के प्रयोग द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को किये सीमा तक प्राप्त किया गया है।

(4) फ़ीडबैक (Feedback) - पाठ्यचर्या निर्माण या विकास की चक्रीय प्रक्रिया का चौथा व अंतिम चरण है - फ़ीडबैक। फ़ीडबैक मूल्यांकन का फ़ल होता है अर्थात् मूल्यांकन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। मूल्यांकन के द्वारा हम वस्तु स्थिति का अनुमान लगाते हैं तथा उसी के अनुसार शिक्षकों व दार्शिकों फ़ीडबैक प्रदान किया जाता है। फ़ीडबैक के द्वारा ही पाठ्यचर्या के प्रारूप को सुधार के लिए दिशा प्राप्त होती है और इस प्रकार यह चक्र निरंतर चलता रहता है।

पाठ्यचर्या विकास में अध्यापकों की भूमिका : -

पाठ्यचर्या विकास में शिक्षक की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण है कि अध्यापक की ज़िम्मेदारी के बिना पाठ्यचर्या विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। पाठ्यचर्या नियोजन व विकास में शिक्षक की प्रत्यक्ष ज़िम्मेदारी आवश्यक है। क्योंकि शिक्षक ही पाठ्यचर्या को लागू करता है और अनुदेशनात्मक योजनाओं को कार्यान्वित करता है। शिक्षण मूलतः पाठ्यचर्या को क्रियान्वित एवं संपादित करने की क्रिया है। शिक्षक को सम्पूर्ण पाठ्यक्रम विकास के क्रियाकलापों का अंग होना चाहिए।

पाठ्यचर्या विकास में अध्यापक की भूमिका इस प्रकार होनी चाहिए।

- ① शिक्षक को पाठ्यचर्या योजना व विकास के प्रत्येक चरण में शामिल होना चाहिए - जैसे उद्देश्यों के निर्माण से लेकर मूल्यांकन व पाठ्यचर्या सिद्धान्त तक।
- ② पाठ्यचर्या चयन के विकास में भी शिक्षकों की मदद ली जानी चाहिए और आवश्यकताओं के सिद्धान्त में भी उनकी मदद ली जानी चाहिए।
- ③ सहायक शैक्षिक वातावरण को बनाने अर्थात् डिजाइन करने में भी शिक्षक सहायता दे सकते हैं।
- ④ वे आम लोगों को नई पाठ्यचर्या योजना के बारे में बता सकते हैं। विशेष लोग पाठ्यचर्या परिवर्तन के प्रति अधिक सहयोगी बन सकते हैं।

इस प्रकार शिक्षक पाठ्यचर्या के विकास में अपनी ज़िम्मेदारी का सकते हैं। पाठ्यचर्या के विकास में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।



Q(13) पाठ्यक्रम परिवर्तन से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता एवं इसको प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा करें।

Ans. - पाठ्यक्रम परिवर्तन के अर्थ को समझने के लिए 'पाठ्यक्रम सुधार' (Curriculum Improvement) तथा पाठ्यक्रम परिवर्तन के अंतर को जानना आवश्यक है। पाठ्यक्रम सुधार या संशोधन पाठ्यक्रम के बिचरे हुए पहलुओं में किसी प्रकार के परिवर्तन से संबंधित होता है जिससे इसके संप्रत्यात्मक प्रादप (Conceptual design) या संगठन में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं होता है जबकि (पाठ्यक्रम परिवर्तन) इससे संबंधित संस्थाओं में परिवर्तन का घटक होता है। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वे सभी लक्ष्य, उद्देश्य, अन्तर्वस्तु, माफियाँ, संसाधन तथा सभी प्रकार के शीखने के अनुभवों के मूल्यांकन के साधन सम्मिलित होते हैं जो कक्षा-कक्ष अनुदेशन तथा तत्संबंधित अन्य क्रिया-कलापों के माध्यम से विद्यालय एवं समुदाय के अन्दर एवं बाहर विद्यार्थियों के लिए आयोजित किये जाते हैं। पाठ्यक्रम के इस संप्रत्यय को आधार मानते हुए सेलर एवं स्लेक्मिंडर ने 'पाठ्यक्रम परिवर्तन' को इस प्रकार परिभाषित किया है।

"विद्यालय पाठ्यक्रम में होने वाले परिवर्तनों में समुदाय, छात्र जनसंख्या क्षेत्र, व्यावसायिक स्तर तथा समाज में हुए परिवर्तन परिलक्षित होने चाहिए तथा इन सभी परिवर्तनों के द्वारा पाठ्यक्रम परिवर्तन प्रेरित होना चाहिए।"

हिन्डा टावा के शब्दों में, "पाठ्यक्रम परिवर्तन का अर्थ एक प्रकार के एक संस्था को परिवर्तित करना है।"

किसी संस्था को परिवर्तित करना एक कठिन एवं बेकार का कार्य भी शक हो सकता है तथा इसका परिणाम अडा (निर्गोजन) एवं प्रदा (उपलब्धि) या उत्पादन) के संबंधों में उलट-फेर भी हो सकता है। अतः इसके परिवर्तन में बहुत अधिक सावधानी की भी आवश्यकता होती है।

● फ्रेडरिक शॉ (Frederic Shaw) के अनुसार पाठ्यक्रम में अचानक परिवर्तन के लिए अंतरराष्ट्रीय चार प्रमुख शक्तियों की पहचान की है-

① सामाजिक, आर्थिक एवं जनसंप्रत्यात्मक शक्तियाँ :- सामाजिक, आर्थिक एवं जनसंप्रत्यात्मक शक्तियाँ करोड़ों ग्रामीण परिवारों, अल्पसंख्यक जातियों तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों के जीवन को अनेक प्रकार से अक्षय करती रही हैं। शहरी ताताकरण से उनके तकराव (जिनके लिए वैशेषिक सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक आदि दृष्टियों से बहुत पीड़े होते हैं) विद्यालय पाठ्यक्रम में सभी समूहों एवं वर्गों की शिक्षा हेतु नये तत्वों एवं विधियों के समावेश की आवश्यकता को जन्म देते हैं।

② तकनीकी प्रगति - तकनीकी विकास के फलस्वरूप अनेक कार्यों के संपादन

हेतु मुख्य का स्थान प्रश्नों ने ले लिया है जिससे एक तरफ तो कमीकी एवं व्यावसायिक विशेषता के प्राप्ति की आवश्यकता बढ़ती जा रही है तथा दूसरी ओर अर्धकुशल एवं अर्धशिक्षित व्यक्तियों में बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है इसके कारण आर्थिक विप्लव उत्पन्न हो रही है तथा युवाओं के प्रवृत्तियों, विचारों एवं अति-वृत्तियों में परिवर्तन होता जा रहा है। अतः शैक्षिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर इन समस्याओं के निराकरण हेतु पाठ्यक्रमों में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

(3) राजनैतिक शक्तियाँ - किसी भी देश की राजनैतिक व्यवस्था का वहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था प्रायः वहाँ के सरकारों के द्वारा ही किया जाता है अतः शिक्षा राज्य के नियंत्रण में ही रहती है। वर्तमान समय में अधिकांश देशों में प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था है।

'अवसरों की समानता' प्रजातांत्रिक व्यवस्था का एक प्रमुख सिद्धांत है। अतः सभी के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता वर्तमान समय में एक प्रमुख प्रश्न है। इसके लिए पाठ्यक्रम में परिवर्तन एक आवश्यकता हो जाती है। राष्ट्रीय स्तर पर 'एक शिक्षा अभियान' एवं शिक्षा की गुण अधिकारों में सम्मिलित करना इसी का परिणाम है।

(4) ज्ञान में तीव्र वृद्धि - मानव ज्ञान में अप्रत्याशित रूप से निरंतर वृद्धि होती जा रही है। विज्ञान एवं गणित में तीव्र वृद्धि सर्वाधिक गति से हो रही है। सामाजिक विषयों में प्रतिवर्ष नवीन अन्वेषण का समावेश होता जा रहा है। मानवीय ज्ञान-कोष में वृद्धि एवं उत्पत्ति बढ़ती हुई आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप अनेक नए विषयों का प्रादुर्भाव हो रहा है। मनोविज्ञान के विकास ने सीखने के अनेक नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

(5) शैक्षिक शोध - (Educational Researches) - शैक्षिक शोधों के निष्कर्ष के आधार पर नवीन पाठ्यक्रम सिद्धांतों का प्रतिपादन भी पाठ्यक्रम परिवर्तन का एक कारक होता है। यद्यपि शोधों पर आधारित पाठ्यक्रम सिद्धांतों ने पाठ्यक्रम परिवर्तन को बहुत थोड़ा ही प्रभावित किया है किन्तु अन्य परिवर्तनकारी शक्तियों के साथ इसकी जुगुप्सा भी निर्णीयक होती है। शोधों के द्वारा ही पाठ्यक्रम परिवर्तन की सार्थकता का सशुचित विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी किया जाता है।

Q(14.) ज्ञान एवं बुद्धि का विकास करने वाले तक पहुँचाने में एक अध्यापक की क्या भूमिका है ? विचार से वर्णन करें ।

किशु - अध्यापक :- किसी भी शिक्षा प्रणाली में अध्यापक का मुख्य स्थान होता है। सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली अध्यापक के चारों ओर ही घूमती है। प्राचीन वैदिक काल में गुरु को अध्यात्मिक पिता माना जाता था। एक अध्यापक स्वयं की वैदिक, अध्यात्मिक क्षमताओं का विकास करता है और अज्ञान रूपी अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। विद्यार्थियों को पशुता से मानवता की ओर ले जाता है। यह अध्यापक ही है जो कि जीवन को जीने के योग्य बनाता है वह समाज निर्माता, राष्ट्र निर्माता है। लालो, अरबु, सुकुरात, नामक, विवेकानंद, महात्मा गाँधी जैसे समाज सुधारक अध्यापक जिन्होंने समाज को नयी दिशा प्रदान की। आज भी पश्चात्य देशों ने इनकी महानता को स्वीकार किया है।

प्राचीन वैदिक परम्परा में भी कहा गया है कि " गुरुं प्रथमां गुरुं विष्णुं गुरुं देवीं महेश्वरं, गुरुः साक्षात् परब्रह्मं, तस्मै श्री गुरुवे नमः । " अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही परमेश्वर है, गुरु ही ब्रह्मा परब्रह्म है, ऐसे गुरु को नमस्कार है।

डॉ० जाकिर हुसैन - " प्रिंसिपल्स अध्यापक हमारे भविष्य का निर्माता हैं। सर जॉन एडम - " अध्यापक मनुष्य का निर्माता है। "

एच० जी० वेल्ज - " अध्यापक ही इतिहास का वास्तविक निर्माता है। "

अध्यापक की भूमिका एवं कर्तव्य :-

कक्षा कक्ष प्रबंधन में एक अध्यापक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वह करता है। उसे एक अध्यापक, एक प्रबंधक, एक आर्थिक, एक मनोवैज्ञानिक, एक नेता, एक निर्देशक, एक अनुसंधानकर्ता की भूमिका निभानी पड़ती है। एक अध्यापक की शिक्षण के साथ-साथ अन्य पाठ्यसहायक क्रियाओं की भी जानकारी होनी आवश्यक है। उसे विद्यार्थियों, सहकर्मियों व संस्थान के मुखिया सभी लोगों के साथ सामाजिक संबंध कायम करना होता है। अध्यापक का समर्पण, विषय-वस्तु पर स्वामित्व और शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग कक्षा में श्रेष्ठता लाता है। कक्षा-कक्ष की क्रियाओं का प्रबंधन कक्ष में अध्यापक शिक्षण प्रशिक्षण और अनुसंधान का प्रभावपूर्ण उपयोग कर सकता है।

ज्ञान का संक्षेप :-

अध्यापक बालक के विकास की प्रक्रिया का एक

अभिन्न भाग है। हम ये कह सकते हैं कि अध्यापक शिक्षा-प्रक्रिया की धुरी है। जब शिक्षा-प्रक्रिया की बात चलती है तो एक ऐसा व्यक्ति हमारे सामने खड़ा दिखाई देता है जो शिक्षा-प्रक्रिया को विद्यार्थियों के लिए सुविधापूर्ण बनाता है।

बालक का ज्ञान संचय करने तथा ज्ञान विस्तार करने में अध्यापक निम्नलिखित भूमिका निभाता है।

① प्रश्न-पुष्टि का साहस - अध्यापक छात्रों से प्रश्न-पुष्टि है उनके चिन्तन तथा अनुशासन रखने की शक्ति को बढ़ाने के लिए। अपने छात्रों को अध्यापक चिन्तशील बनाना चाहता है। वह यह भी चाहता है कि छात्र विषय की गहराई से समझें तथा उससे संबंधित ज्ञान प्राप्त करें।

② खाली समय का सुदुपयोग करने की कला :- अध्यापक छात्रों में खाली समय का सुदुपयोग करने हेतु अनेक रुचिकर कार्यों का अध्ययन विज्ञान शिक्षा द्वारा कराया जाता है, जैसे कि कैलेंडर, स्टाडी बनाना, पेंट, आदि वस्तुएँ बनाना। इन सभी उपयोगी कार्यों से विज्ञान का अध्ययन कलापूर्ण तथा रोचक होने के साथ-साथ जीवन के लिए उपयोगी हो जाता है।

③ संचालक के रूप में अध्यापक - बालकों को अध्यापक पहले से ही चर्चा का विषय तथा बिना बता देता है। वह उपविषय की विषय-सामग्री पर एक संक्षिप्त भूमिका लिखता है। इसी से पुस्तकालय की पुस्तकों तथा पाठ्य-पुस्तकों में वर्णित निर्देश पढ़ने की अपेक्षा की जाती है ताकि वे चर्चा के लिए तैयार होकर आएं। वे अपनी समस्याओं को अध्यापक के सलाह-मशविरा कर्ता सुलभता रखते हैं।

④ एक अच्छा दार्शनिक - अध्यापक को एक अच्छा दार्शनिक होना चाहिए। उसे शिक्षा की तथा समाज की आवश्यकताओं के बारे में दूरदृष्टि होनी चाहिए तथा शिक्षा से संबंधित नवीन खोजों की जानकारी होनी चाहिए। जिससे कि वह समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उचित कार्य कर सके। क्योंकि जैसे-जैसे समय बदलता है तो समाज की विचारधाराएँ भी बदलती जाती हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि अध्यापक छात्रों तक ज्ञान को रकड़ कर पढ़ाओं में महत्वपूर्ण भूमिका एवं सहयोग प्रदान करता है जिससे छात्र का अपना सर्वांगीण विकास कर पाता है।

Q(15.) आदर्शवाद से आप क्या समझते हैं? इनके सिद्धांतों का वर्णन करें।

Ans. — 'Idealism' शब्द की उत्पत्ति एलेगो के आध्यात्मिक सिद्धांत से हुई है "अंतिम वास्तविकता, विचारों या विचारवाद में है।" Idealism में 'I' का अक्षर को केवल उच्चारण की आसानी के लिए जोड़ दिया गया है। इसका सही रूप तो 'Ideavism' है पर आम तौर पर 'Idealism' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। आदर्शवाद वह दर्शन है, जो मन की प्रकृति को वास्तविक मानता है, आदर्शवादियों का विश्वास है कि जो बात सत्य या वास्तविक है वह अवश्य ही आध्यात्मिक या मानसिक है। उनका यह भी विश्वास है कि भौतिक संसार (मन) की अभिव्यक्ति का साकार रूप है।

आदर्शवाद आध्यात्मिक सत्यों तथा मूल्यों - सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को ही सर्वोच्च, शाश्वत तथा सर्वव्यापी मानता है, इसकी मान्यता है कि ये मूल्य ही अंतिम लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होते हैं इसलिए इनको जानना व्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है।

आदर्शवाद के मूल्य एवं आचार मीमांसा :- (Value and Conduct of Idealism) :-

आदर्शवाद के अनुसार मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्मानुभूति है, और आत्मानुभूति के लिए तीन सनातन मूल्यों - सत्य, शिवम्, सुन्दरम् की प्राप्ति आवश्यक है और इन मूल्यों की प्राप्ति के लिए नैतिक नियमों का पालन किया जाना चाहिए, जो मनुष्य इन नैतिक नियमों - संचय, धैर्य, ज्ञान तथा त्याग का जितना अधिक पालन कर लेता है वह उतना ही अधिक सनातन मूल्यों की ओर बढ़ जाता है और आत्मानुभूति करने में सफल होता है।

आदर्शवाद के मूल सिद्धांत - (Fundamental Principles of Idealism)

① आध्यात्मिक जगत् का महत्व (Importance of Spiritual World) → आदर्शवादी दार्शनिकों ने जगत् को दो भागों में विभाजित किया है - (a) भौतिक जगत् जो कि नाशवान् परिवर्तन तथा आध्यात्मिक जगत् की एक अलक मात्र है, तथा (2) आध्यात्मिक जगत् जो स्वयं में पूर्ण है, असंशुद्ध है, अपरिवर्तनशील है, इसलिए यही वास्तविक है। इसी आध्यात्मिक जगत् की समझना जीवन का परम लक्ष्य है।

② विचार का महत्व - (Importance of Idea) - आदर्शवादी दार्शनिकों की अपेक्षा विचार को अधिक महत्व देते हैं, उनके अनुसार, विचार

ही प्रत्य और वास्तविक है वस्तु नहीं। जैम्स के अनुसार —  
" विश्व धर्म की अपेक्षा विचार के अधिक समान है।"

(3) मनुष्य का महत्व - (Importance of being Human) —  
आदर्शवाद जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य को आधार बनाता है,  
क्योंकि मानव एक मात्र ऐसा जीव है जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान  
की प्राप्ति करे, उसकी अभिव्यक्ति करे एवं उसे उपयोग में लाने  
की शक्ति है। इसके अलावा मनुष्य बुद्धि, तर्क, नैतिक, धार्मिक  
एवं आध्यात्मिक शक्तियों से विभूषित है, बुद्धि एवं आत्मा के प्र-  
काश का आभास करता है और इन्हीं के माध्यम से अपना  
अविद्य निर्माण करता है।

(4) आध्यात्मिक मूल्यों का महत्व : → आदर्शवादी विचारकों ने  
तीन आध्यात्मिक मूल्यों - सत्य, शिवम्, सुन्दरम् को प्रतिपादित  
किया है। इनके अनुसार यह मूल्य शाश्वत एवं सर्वव्यापी हैं।  
उनका मानना है कि जो व्यक्ति इन मूल्यों को पहचान लेता है,  
वह ईश्वर से साक्षात्कार कर लेता है।

(5) मन का महत्व → आदर्शवादियों ने वाहरी संसार की  
तुलना में मन को विशेष महत्व दिया है, उनके अनुसार सत्य  
की प्राप्ति भौतिक जगत में संभव नहीं है और आत्मा या  
मन कल्पित नहीं वास्तविक है।

(6) अनेकता में एकता का उद्देश्य (Objective of Unity  
in Diversity) → आदर्शवादियों के अनुसार विश्व  
की समस्त वस्तुओं की भिन्नता में भी समानता होती है, इसी  
समानता को ईश्वर कहा जाता है, जिसके द्वारा विश्व की  
समस्त वस्तुएं संचालित होती हैं। शिक्षा का लक्ष्य बालक  
को इसी एकता का आभास कराना है। " इस भ्रमण्डल पर  
सितनी भी वस्तुएं हैं, उन सभी में देवीय एकता है वही एकता  
परमात्मा है।" - फ्रावेल।

" आदर्शवादी शिक्षा वह दर्शन प्रदान करता है जिसमें मनुष्य  
अपने आपको मानसिक विश्व का पूर्णतः समग्र लक्ष्य - सर्व

आतः हम कह सकते हैं कि "केवल आदर्शवाद

ही शिक्षा का प्रतीकचक्र आधार है, भौतिक संसार जिसे विद्वान् जानता  
है अपूर्ण वास्तविकता है। इसे आदर्शवाद का आध्यात्मिक संसार ही  
पूर्ण करता है।" क्योंकि आदर्शवाद मानता है कि संसार ही सब कुछ नहीं है। इस  
संसार के परे भी एक संसार है जो सर्वोत्तम है और वह ही वास्तविक सत्ता।

Q(16.) अस्तित्ववाद से आप क्या समझते हैं? इसके सिद्धांतों का वर्णन करें।

Ans: - 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ। या 'मर में नारायण' अर्थात् ईशान ही भगवान हैं, न जाने ऐसे कितने वाक्य हैं जो व्यक्ति को ही श्रेष्ठ मानता है तथा वैयक्तिक को ही सर्वोपरि मानते हैं, और इसी विचारधारा के साथ द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् दार्शनिक पद्धतियों के क्रम में उदय हुआ अस्तित्ववाद या सत्तावाद का जिनकी मान्यता है कि - 'व्यक्ति ही संसार में सब प्रकार की क्रियाओं का केन्द्र है और मापदण्ड अस्तित्व का वैयक्तिक स्वरूप ही है जो मनुष्य राष्ट्र, समाज और विश्व के अस्तित्व का निर्धारण करता है और इस वैयक्तिक के विकास के लिए समाज एक साधन मात्र है न कि साध्य।

व्यक्ति अपने समाज का खुद निर्माता होता है और खुद ही वह इसका नाश भी कर सकता है। व्यक्तिगत अस्तित्व ही अस्तित्ववादियों के अनुसार ही ईश्वरिय सत्य है और इनका मानना है कि अस्तित्ववाद समय की सीमाओं में बंधा हुआ नहीं है, यह न प्राचीन है, न आधुनिक और न नवीन है, यह पहले भी था, आज भी है, और आगे भी रहेगा। व्यक्ति अपनी सत्ता या अस्तित्व को बनाये रखने के लिए, कैंसा प्रयास करे और कैंसी सफलता प्राप्त करे। प्रयास सदैव होते रहे हैं, हो रहे हैं और होते रहेंगे।

अस्तित्व या सत्ता का अर्थ :- अस्तित्ववाद के अनुसार अस्तित्व का अर्थ केवल व्यक्ति का जीना मात्र न होकर उसका पूर्ण, शक्तिशाली, आत्मचेतना युक्त, सम्मान उत्तरदायी और प्रगतिशील जीवन बनाये रखना है। अपने अर्थ में अस्तित्व की प्रकृति स्वतंत्र तो अवश्य है लेकिन यह स्वतंत्रता केवल अनुशासित होकर सही आचरण करने में है न कि अलाम्बिक-अनैतिक व्यवहार करने में।

अस्तित्ववादी दर्शन इतना क्रांतिकारी तथा जटिल है कि शिक्षा की दृष्टि से इस पर बहुत कम विचार हुआ है।

(1) अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य - अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित तीन धारणाओं पर आधारित हैं।

(a) मनुष्य जो बनना चाहे वह इसके लिए स्वतंत्र है।

(b) मनुष्य को चयन करने की स्वतंत्रता है।

(c) अपने चयन का सम्पूर्ण दायित्व स्वयं उसका है। अतः उसे निर्दिष्ट पीड़ा, संदेह तथा कुण्ठाओं के बीच जीवित रहना पड़ता है।

② अस्तित्ववाद तथा बालक → अस्तित्ववाद के अनुसार बालक केवल व्यक्ति है जिसका इस संसार में न कोई, न कोई हितैषी है। बालक न मूल प्रवृत्तियों का दास है और न सामाजिक वातावरण द्वारा अनुकूलित व्यवहार प्रणाली का। वह तो एक व्यक्ति है जिसका एक विलक्षण व्यक्तित्व है। शिक्षा के द्वारा उसके व्यक्तित्व का विकास एवं विलक्षणता की रक्षा की जानी चाहिए।

③ अस्तित्ववादी तथा शिक्षक → अस्तित्ववादी के अनुसार शिक्षक इस प्रकार के होने चाहिए -

(a) शिक्षक विषयों को इस प्रकार प्रस्तुत करे जिससे बालक उसमें गिहित सत्य की स्वतंत्र सहचर्य द्वारा खोज सके।

(b) शिक्षक-छात्रों के मस्तिष्क का इस रूप में विकास करे जिससे मस्तिष्क स्वतः संचालन के रूप में कार्य कर सके।

(c) शिक्षक द्वारा छात्र को ऐसी शिक्षा प्रदान की जाये जिससे वे सत्य का स्वयं निश्चय कर सकें।

(d) शिक्षक छात्रों को उनके द्वारा चयन किए गए निर्णयों के मतलब का रहस्य कराये।

④ अस्तित्ववाद तथा पाठ्यक्रम → अस्तित्ववाद के अनुसार सत्य अनन्त है। अतः कोई निश्चित पाठ्यक्रम करना संभव नहीं है। अस्तित्ववाद व्यक्ति की विवेकात्मक पक्ष की अपेक्षा भावात्मक पक्ष पर अधिक बल देता है।

⑤ अस्तित्ववाद तथा शिक्षण विधि - अस्तित्ववादी ज्ञान-मीमांसा के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने प्रयास से ज्ञान प्राप्त करता है और वह जो भी अवधारणाएँ आदि ग्रहण करता है, उन सबके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। अस्तित्ववाद सहज ज्ञान में आस्था रखता है।

⑥ अस्तित्ववाद तथा विद्यालय - अस्तित्ववादी विचारधारा इतनी जटिल तथा गहन है कि इसके आधार पर किसी संगठित विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती है। समाज अपनी संस्कृति विरासत के रक्षण, हस्तान्तरण तथा विकास के लिए विद्यालयों की स्थापना करता है, परन्तु अस्तित्ववाद अति-व्यक्तिवादी तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक होने के कारण सांस्कृतिक विरासत के हस्तान्तरण में आस्था नहीं रखता। इस दृष्टि से विद्यालय की स्थापना या कल्पना इसके दायरे में ही नहीं की जानी है। यह व्यक्तिगत अध्ययन को ही स्वीकार करता है।